स्वामी केशवानन्द

योग पत्रिका

Swami Keshawanand Yoga Patrika



नमस्कार आसन

(१, १२)



[March, 2008 Vol. 25, Part 3]

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली

Swami Keshawananda Yoga Patrika

(A Monthly Journal of)

Swami Keshawananda Yoga Institute (Trust)

B-2/139-140, Sector 6, Rohini,

Delhi-85, (India) Tel. : 011-65042051 (M) : 9868243995

S.K. Yoga Patrika is distributed free to members of **Swami Keshawananda Yoga Institute,** DELHI.

	India	Abroad
Life-Patron	Rs. 10,000,00	$ 2,000.00
Annual-Patron	Rs. 2,000.00	$ 200.00
Life Membership	Rs. 1,500.00	$ 200.00
Annual Membership	Rs. 125.00	$ 20.00

स्वामी केशवानन्द

योग पत्रिका

अवैतनिक सम्पादक : डॉ० विजय लक्ष्मी

Vol. 25] March 2008 [Part 3

दिव्य सन्देश
DIVINE MESSAGE



ओम् अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुर विद्यया।
इति शुश्रम धीरणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।।
ओं विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

ईशावास्योपनिषद् 10-11, यजुर्वेद 40. 13-14

तत्त्व ज्ञानी मनीषियों ने यह स्पष्ट किया है कि अविद्या अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान सहित प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्राप्त ज्ञान तथा विद्या अर्थात् स्वयं प्रगट ज्ञान के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं।

जो साधक विद्या और अविद्या दोनों का समान रूप से परस्पर विश्लेषण और समन्वय करते हुए उनके परिणाम पर आश्रित होते हैं, वे अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमरता का आनन्द लाभ करते हैं।

The wise have explained to us that one result is derived from the culture of knowledge based on intuition (vidya), and it its said that a different result is obtained from the culture of knowledge based on pramanas (Avidya).

Only one who can learn Vidya and Avidya both side by side can transcend the influence of repeated birth and death, and enjoy the full blessings of immortality (Amritatva).

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली

जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा के नये आयाम

मनुष्य के सभी क्रियाकलाप उसकी इच्छा से प्रारम्भ और नियन्त्रित होते हैं। इच्छाओं का नियमन उसके विचारों द्वारा होता है, विचारों का परिष्कार चिन्तन मनन से प्रसूत विवेक, जिसे बुद्धि भी कहते हैं, के द्वारा होता है। शिक्षा बुद्धि (विवेक) को समृद्ध बनाने की प्रक्रिया है। दूसरी ओर मनुष्य जो कर्म (क्रियाएं) करता है, उन्हें दो स्वरूपों में विभाजित किया जाता है सत्कर्म (पुण्य) और असत् कर्म (पाप)। इस सत्य से सभी परिचित हैं कि पुण्य कर्म करने का परिणाम सुख होता है और पाप कर्मों का परिणाम दुःख होता है। इससे इस निर्णय पर पहुंचने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि मनुष्य के सुख-दुःख का परम्परया मूल कारण शिक्षा है।

शिक्षा के उद्देश्य और उसके अनुसार शिक्षा के आयाम भी तीन हो सकते हैं भौतिक समृद्धि प्रदान करने वाली रोजगार परक शिक्षा, अधिक तेजस्वी रोबदाब बढ़ाने वाली शिक्षा जो प्रशासन करने की योग्यता और उसके द्वारा प्रशासन करने का अधिकार प्रदान कर सके। और तीसरी शिक्षा वह जो मनुष्य को नैतिक जीवन जीने की शिक्षा देकर उसे सच्चा मनुष्य बना सके। वर्तमान काल में प्रायः प्रथम प्रकार की शिक्षा ही लोगों का उद्देश्य बनती जा रही है। कुछ माता पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को प्रशासन करने की योग्यता उत्पन्न करने वाली शिक्षा के लिए भी प्रेरित कर रहे हैं। किंतु नैतिकता पूर्ण जीवन जीने की आदर्श मनुष्य बन कर जीने की शिक्षा की, जीवन के समग्र विकास की शिक्षा की प्रायः संपूर्णतया उपेक्षा हो रही है संभवतः यह स्थिति समाज में कभी कभी आती रहती है। तभी शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में एक कथा प्राप्त होती है, वह इस प्रकार है—

'प्राचीन काल में कभी एक राजा ने अग्नि को अपने मुख में बंद कर लिया ब्राह्मण ऋषि बहुत दुःखी हुए वे अपना प्रधान कर्म यज्ञ (ज्ञानयज्ञ) अब कैसे सम्पन्न करें। उन्होंने परस्पर विचार विनिमय किया और राजा के पास पहुंचकर अग्रि का स्तुतिगान इस मन्त्र से करने लगे—

ओं वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि, अग्ने बृहन्तमध्वरे।[1]

'हे अग्निदेव! आप वीतिहोत्र हैं, अन्न आदि सुखद ऐश्वर्य के दाता हैं और इसी कारण आप तेजस्वी और आदरणीय हैं। इस महान् अध्वर में हम आपको प्रदीप्त कर करना चाहते हैं।[2] इस स्तुतिमयी प्रार्थना को सुनकर भी राजा के मुख से अग्नि बाहर नहीं आयी। तब उन्होंने निम्नलिखित दूसरे मन्त्र से स्तुति प्रारम्भ की—

ओम् उदग्ने शुचयस्तव शुक्राः भ्राजन्तईरिते। तव ज्योतींषि अचर्य।[2]

'हे अग्निदेव! आपकी दिव्य कान्ति (तेजस्वी प्रभाव) बहु व्यापक है, यह सभी ओर क्रमशः विस्तृत होता है, हम आपकी दिव्य-ज्योति की अर्चना करते हैं।' इस द्वितीय स्तुतिमयी प्रर्थना को सुनकर भी राजा के मुख से अग्नि बाहर न आ सकी। तब उन्होंने निम्नलिखित तृतीय मन्त्र से अग्नि की स्तुति प्रारम्भ की–

ओं तं त्वा धृतस्नवीमहे चित्र भानो स्वर्दृशम्, देवां आ वीतये वह।[3]

हे अग्निदेव! हम आपको धृतस्नु बना रहे हैं आपमें विविध तेज है आप स्वर्ग का अनुभव कराते हैं अर्थात् सर्वविध लौकिक और पार लौकिक सुख प्रदान करने वाले हो विघ्नि सुखों की प्राप्ति के लिए आप देवत्व का विस्तार करें। इस तृतीय मन्त्र का उच्चारण होने पर 'धृतस्नवीमहे' पद के निकलते ही राजा के मुख से अग्नि निकल कर बाहर आ गई और वे ब्राह्मण ऋषि उससे यज्ञ (ज्ञानयज्ञ) करते हुए पूर्व में सदानीरा नदी तक चले गए।

अब हम इस कहानी के तात्पर्यार्थ पर विचार करें। विचार प्रारम्भ करते ही हमारे मानस में दो प्रश्न पूरे वेग से प्रकट होते हैं। 1. क्या भौतिक अग्नि मुख में बन्द करके रखी जा सकती है? शायद नहीं। यदि औषधि आदि किसी उपाय से रख भी लें तो वह मुख में स्थित जलीय पदार्थ के सम्पक से शान्त हो जाएगी बुझ जाएगी। इसी प्रकार बन्द होने पर वह आक्सीजन न मिल पाने से भी शान्त हो जाएगी, वह अग्नि नहीं रह पाएगी 2. दूसरा प्रश्न है यदि किसी ने किसी चेतन या अचेतन पदार्थ बन्दी बना लिया है तो उसे मुक्त कराने के लिए स्तुति और प्रार्थना बन्दी की करनी चाहिए या जिसने बन्दी बनाया है उसकी? प्रार्थना तो बन्दी बनाने वाले की होनी चाहिए बन्दी की नहीं। यहां स्तुति अग्नि की हो रही है जो बन्दी है। यह असंगति ही इस कथान के तात्पर्यार्थ तक पहुंचने की कुंजी है। यहां राजा के मुख में बन्द अग्नि भौतिक अग्नि नहीं ज्ञानाग्नि है। राजा ने राजाज्ञा से शिक्षा क्रम में अनर्थ देखकर शिक्षा प्रसार पर प्रतिबंध लगा दिया है। शिक्षा (ज्ञानाग्नि) राजा के मुख में बन्द है।

सम्भवतः शिक्षा के उद्देश्यों में पतन होते होते यह स्थिति आ गयी होगी कि जिस किसी प्रकार भोग साधना का उपार्जन करो खाओ पियो मौज करो शिक्षा के उद्देश्य और व्यवहार में पतन क्रमशः आजकल भी हो रहा है। नैतिक शिक्षा की उपेक्षा के कारण आचरण में नैतिक आचार का अभाव हो रहा है। पफलतः नेता और प्रशासक घोटाले कर रहे हैं। धन की कामना पाकेटमारी महिलाओं के गले कान के आभूषणों का अपहरण कार आदि की चोरी फिरोती के लिए बच्चों का अपहरण आदि कार्य सामान्य घटना बनते जा रहे हैं। यह शिक्षा के उद्देश्य में पतन के कारण हो

रहा है। धन को ही उद्देश्य बनाकर शिक्षा माता पिता परिवेश और शिक्षा संस्थाएं सभी दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में उत्तम आदर्श राजा राजाज्ञा द्वारा शिक्षा को प्रतिबन्धित करेगा ही, जैसा कि इस कथानक में हुआ है प्रथम मन्त्र 'वीतिहोत्रं त्वा कवे' इत्यादि मन्त्र वीतिहोत्र अर्थात् धनाजन प्रधान शिक्षा योजना का ही प्रस्ताव है इसलिए राजा ने उसकी स्वीकृति नहीं दी, राजा के मुख से अग्नि प्रकट नहीं हुई।

द्वितीय मन्त्र 'उदग्ने शुचयस्तव' इत्यादि में अति विशिष्ट रोबदान दोहरे चेहरे वाले शासक बनाने की शिक्षा भी भौतिकता की ओर नहीं ले जाती। ऐसी शिक्षा संस्था के छात्र गांव से ग्रामीण वेषभूषा में आये अपने पिता के लिए 'ये कौन आये हैं' ऐसा पूछने पर अपने साथियों को उत्तर देते हैं। 'यह मेरे घर का नौकर है।' प्रशासनिक उच्च पदों पर प्रतिष्ठितजन अपने ग्रामीण माता पिता को अपने साथ रखना नहीं चाहते, यदि किसी कारण साथ रखना भी हुआ तो उन्हें विशाल घर के पीछे के कमरों में रहने की व्यवस्था करते हैं। अपने साथी मित्रों से उन्हें दूर रखते वे चाहते हैं कि उनके माता पिता बैठक (ड्रइंगरूम) में न आएं मुख्यतः जब उनके साथी मित्र आए हुए हों। इसमें वे अपना अपमान समझते हैं। इसीलिए 'उदग्ने शुचस्तव' आदि मन्त्र द्वारा प्रस्तुत द्वितीय शिक्षा-योजना को भी तत्वदर्शी राजा ने स्वीकृति नहीं, मुख से अग्नि प्रकट न हुई।

जब ब्राह्मण ऋषियों ने तृतीय योजना प्रस्तुत करते हुए तृतीय मन्त्र 'तं त्वा घृतस्नवीमहे' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण प्रारंभ किया तो 'घृतस्नवीमहे' शब्द के निकलते ही राजमुख से अग्नि फूट पड़ी बाहर आ गयी अर्थात् उस शिक्षा योजना के अनुसार शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी।

आप सभी घृत से परिचित हैं यह पाचक अग्नि को प्रदीप्त करने वाला[4] शरीर को सुन्दर पुष्ट और बलवान वीर्यवान् बनाता है चाणक्य नीति कहती है 'पयसा वर्धति तनुः घृतेन वर्धते वीर्यम्' इत्यादि। आयुर्वेद के प्राचीन आचार्य भावमिश्र कहते हैं—

घृतं गव्यं विशेषण चक्षुष्टां वृष्टामग्निकृत
स्वादु पाकरसंशीतं वात पित्तकफापहम्।
मेघालावण्य कान्त्योजस्ते जो वृद्धि करम्परम्।
अलक्ष्मी पापरोगघ्नं वयसः स्थापनं गुरुः।
बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमंगल्यं रसायनम्।[5]

अर्थात् घृत विशेषकर गौ का घृत नेत्रों की दर्शनशक्ति बढ़ाने वाला वीर्य और पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला, शीतल त्रिदोषनाशक धारणा शक्ति (स्मरणशक्ति)

सौंदर्य कान्ति ओज तेज को बढ़ाने वाला पापरोगों को दूर करने वाला आयु के प्रभाव को रोकने वाला बल कारण आयुवर्धक और रसायन आदि अनेक गुणों से युक्त होता है। घृतस्नु शिक्षा पद्धति भी मान व में अनेकानेक गुणों का विकास करने वाली होगी। जिससे मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली होगी। कथानक का तात्पर्यार्थ यह है शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने वाली होनी चाहिए।

प्राचीन काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में नैतिक आचरण की शिक्षा प्रधान रही है। इसी कारण शिक्षक को आचार्य कहा जाता था। आचार्य की व्युत्पत्ति है 'आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थात् आचिनोति बुद्धि मितिवा।"[6] अर्थात् जो व्यक्ति आचरण का सद्व्यवहार का अभ्यास कराता है, जीवन यात्रा के लिए प्रशस्त पाथेय प्रदान करता है अथवा बुद्धि का विवेक शक्ति का विकास करता है। वह आचार्य कहलाता है। दूसरे शब्दों में आचार्य शिक्षा के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना अपना कर्त्तव्य समझता रहा है। यही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में यह कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व सम्पन्न अतिशय क्रियाशील कुशल आचार्य के संरक्षण में आवासीय शिक्षा संस्थाओं में ही सम्पन्न हो सकता है, आधुनिक शैली के विद्यालयों में नहीं जहां विद्यार्थी विद्यालय में चार पांच घण्टे ही रहता है साथ ही अध्यापक विशेष से उसका संपर्क बड़े समूह के साथ चालिस से साठ मिनट का ही रह पाता है।

ऐसी स्थिति में विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आठों अंगों सहित योगविद्या[7] का प्रशिक्षण उपयोगी हो सकता है। सांसारिक यात्रा सम्बन्धी अर्थात् जीविका देने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम विद्यालयों महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलता ही है। उसके साथ संयुक्त होकर अंगों सहित योग विद्या निजी और सामाजिक जीवन के लिए प्रशस्त पाथेय प्रदान कर सकेगी।

योग के आठ अंगों में जहां आसन स्थूल शरीर के स्थूल भाग के मलों को दूर करके उसे स्वस्थ बनाएगा वहीं प्राणायाम स्थूल शरीर के सूक्ष्म अंगों नस नाड़ियों के मल को दूर करके शरीर को पूर्ण स्वास्थ्य सौंदर्य और शक्ति प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त प्राणायाम स्मरण शक्ति में वृद्धि करने वाला होगा। योग विद्या का पांचवां अंग प्रत्याहार साधक को पूर्ण संयमी और इन्द्रियजयी बना सकेगा जिससे उसके पथ भ्रष्ट होने की सम्भावना सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। योगविद्या के छठे और सातवें अंग धारणा और ध्यान मेघा को, स्मरण शक्ति को बढ़ाने के साथ चिन्तन और मनन की शक्ति को विकसित और समृद्ध बनाकर कर्म में कौशल प्रदान कर सकेंगे, जिससे साधक जीवन के जिस क्षेत्र में भी आगे बढ़ना चाहेगा सफलता उसके

चरण चूमेगी।

योग विद्या के प्रथम और द्वितीय अंग यम और नियम[8] साधक के मन में होने वाली सभी पीड़ाओं को जड़मूल से नष्ट करने में समर्थ हैं, क्योंकि सभी प्रकार की पीड़ाओं के मूल में लोभ मोह और क्रोध हुआ करते हैं। लोभ वश मनुष्य कुछ प्राप्त करना चाहता है। प्रयत्न करने पर भी प्राप्ति न होने पर निराशाजन्य पीड़ा होती हैं मोह वश वह किन्हीं चेतन या अचेतन पदार्थ से विलग नहीं होना चाहता किन्तु वियोग होता है। अभीष्ट की प्राप्ति में बाधक और प्राप्त के वियोग के कारण के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है जिसके पफलस्वरूप वह हिंसा छल चोरी आदि में प्रवृत्ति होता है और मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार हिंसा असत्य (छल) स्तेय (चोरी) इत्यादि पांचों वितको के मूल में लोभ मोह और क्रोध ही हुआ करते हैं।[9] इसलिए वे अहिंसा आदि यमों के पालन करने के लिए प्रतिपक्षभावना को विकसित करने को कहा है जो प्रकारान्त से पूर्ण वैराग्य के लिए प्रेरित करता है। ये अहिंसा आदि साधक विशेष के लिए ही नहीं उन्होंने इन्हें महाव्रत कहकर सबके अनिवार्यतः पालनीय स्वीकार किया है।[10]

इसके अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि ने अहिंसा आदि यमों की साधना के फलस्वरूप उसके मन में उसके प्रति और उसके समीप अन्य प्राणियों में भी वैरभाव की निवृत्ति, समस्त क्रियाओं की पूर्ण सफलता सब प्रकार के रत्नों अर्थात् धन सम्पत्ति ऐश्वर्य की अनायास उपस्थिति अतिशय शक्तिमत्ता और जन्म के हेतुओं का अर्थात् प्रारब्ध (दैव) का पूर्ण ज्ञान आदि परिणाम भी बतलाए हैं जो सब प्रकार से सुख शान्ति के हेतु हो सकते हैं।[11]

इसी प्रकार नियम भी जीवन में सुख शान्ति की प्रतिष्ठा के आधार बनते हैं नियमों में प्रथम शौच शारीरिक और मानसिक भेद से प्रथम दो प्रकार का है। शारीरिक शौच के पुनः दो उपभेद हैं बाह्य और आभ्यान्तर। आधुनिक आयुर्विज्ञान शारीरिक रोगों के मूल में कीटाणुओं को स्वीकार करता है। बाह्य शारीरिक शौच से रोगोत्पादक कीटाणुओं के शरीर में संक्रमण की सम्भावना ही न रहेगी। प्राचीन भारतीय आयुर्विज्ञान वात पित्त और कफ की विषमता को असन्तुलन को शारीरिक रोगों का मूल मानता है आभ्यान्तर शौच से वात पित्त और कफ के असन्तुलन और विषमता का प्रतिरोध करेगा। इस प्रकार शारीरिक के अभ्यास से साधक शरीर से पूर्ण स्वस्थ होने के कारण शारीरिक पीड़ा से सदा मुक्त रहेगा। इसी प्रकार मानसिक शौच का साधक रागद्वेष आदि मनोविकारों को दूर करने का प्रयत्न करेगा तो मानसिक रोगों की पीड़ाएं उसे कभी न हो सकेगी।

द्वितीय नियम सन्तोष की साधना को फलस्वरूप जो सुख मिलता है उसके समान तो कोई और सुख है ही नहीं।[12] पुराण को प्रमाण माने तो समस्त कामनाओं की पूर्ति में जो सुख है अथवा देवलोक में जिस सुख की कल्पना की जाती है वे सब सुख तृष्णाक्षय रूप सन्तोष से प्राप्त होने वाले सुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।[13]

नियमों में तृतीय तपस् की साधना का फल तो अपूर्व है। इसकी साधना से अशुद्धि का क्षय होने पर शरीर और इन्द्रियों की सर्वात्मना शुद्धि हो जाती है।[13] वाचस्पति मिश्र के अनुसार साधक को अणिमा महिमा लधिमा गरिमा प्राप्ति प्रकाम्य ईशित्व और वशित्व सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।[15] तप का एक स्वरूप यह है कि साधक के मन में यह विश्वास प्रतिष्ठित हो जाए कि प्रत्येक विपरीत परिस्थिति हमारा निर्माण करने हेतु आती है हमारे भविष्य को संवारती और सम्भालती है। जिस प्रकार गुलाब आदि पौधों की कटाई छटाई यथा समय होने पर उसमें बड़े फूल आने लगते हैं। साधक का ऐसा संस्कार बन जाने पर उस पर आने वाले सभी दुःख और संकट सुखदायी लगने लगेंगे, दुःख सुख में बदल जाएंगे।

नियमों में चतुर्थ स्वाध्याय एक ओर पूर्व वर्णित साधना पथ पर साधक की श्रद्धा को परिपुष्ट करेगा साथ ही मन्त्र जप आदि रूप स्वाध्याय इष्ट देवता के दर्शन और उसकी कृपा प्राप्ति का हेतु होगा।

अन्तिम नियम परम प्रभु परमेश्वर की प्रप्राप्ति (शरणागति) की तो महिमा अपार है। जीवन के सभी कर्म सभी क्रियाएं उस परम प्रभु को समर्पित है कर देने पर सभी भवबन्धन कट जाते हैं जरा मरण से मुक्ति मिल जाती है।

इस प्रकार वर्तमान काल में प्रचलित शिक्षा के आयाम में यम नियम आदि आठ अंगों सहित अथवा दीर्घ काल में साध्य समाधि को छोड़ दें तो सात अंगों सहित योग विद्या को संयुक्त कर दें तो विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव हो सकता है, उसे कालान्तर में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार का सुख अपार आनन्द प्राप्त हो सकता है साथ ही उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की सिद्धि भी मिल सकती है।

---

1. ऋग्वेद 5, 26, 3, यजुर्वेद 2, 4 सामवेद 1523
2. ऋग्वेद 8,44,17 सामवेद 1534
3. ऋग्वेद 5.26.2. सामवेद 1522
4. चाणक्यनीति
5. भावप्रकाश निघण्टु पृ. 401 घृतवर्ग 4.6

6. निरुक्त नैगमकाण्ड
7. यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोदष्टावंगानियोगसूत्र 2.29
8. अहिंसा सत्यास्ते ब्रह्मचर्या परिग्रहाः यमाः। शौच सन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर परिधानानि नियमाः। योग सूत्र 2.30.32
9. वितर्काहिसादयः कृतकारितानुमोदिताः लोभक्रोधमोह पूर्वकाः ..... इति प्रतिपक्षभावनम्। योगसूत्र 2-34
10. तेजाति देशकालसमयानवच्छिनाः सार्वभौमाः महाव्रतम्। योगसूत्र 2.31
11. अहिसा प्रतिष्ठायां वैरत्यागः। सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। अस्तेय-प्रतिष्ठायां सर्वस्त्लोपस्थानम्। व्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः। अपरिग्रह-स्थैर्ये जन्मकथनता सम्वोधः। योगसूत्र 2.35-39
12. सन्तोषादानुतम सुखलाभः। योग सूत्र 2.42
13. यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नाहेतः षोडसीं कलाम्। योगभाष्य से उद्धृत 2.42 पृ. 264
14. कायेन्द्रियशुद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः।। योगासूत्र 2.43
15. तत्ववैशारदी 2.43 पृ. 264

—स्वामी अनन्त भारती

यजुर्वेद पारायण महायज्ञ

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली

श्रीयुत धर्मप्रेमी बन्धुओं!

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि आगामी फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी (शिवरात्रि-बोधरात्रि) से फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी दिन गुरुवार से मंगलवार तदनुसार मार्च 6-11 सन् 2008 को प्रतिदिन सायंकाल तीन बजे से यजुर्वेद पारायण महायज्ञ सम्पन्न होगा। यज्ञ के ब्रह्मा परमहंस स्वामी अनन्त भारती जी एवं प्रमुख उद्‌गाता डॉ० वेदव्रत आलोक एवं डॉ० श्रीवत्स जी होंगे।

इस पुण्य अवसर पर आपकी उपस्थिति प्रार्थित है।

इस पारायण महायज्ञ में जो महानुभाव यजमान होना चाहें वे पूज्य स्वामी जी से 20 फरवरी तक स्वीकृति प्राप्त कर लें। एतदर्थ किसी शुल्क की अपेक्षा न होगी।

समय : सायंकाल 3 बजे प्रतिदिन।

भवदीय

प्रभाकर अवस्थी एडवोकेट (सचिव)
स्वामी केशवानन्द योग संस्थान
बी-2/139-140, सेक्टर-6, रोहिणी, दिल्ली-110085
दूरभाष : 011-65042051, 9868243995

मांसाहार अति अमानवीय भोजन है

मनुष्य की प्रकृति शाकाहारी है या मांसाहारी, इसका पता लगाने के लिए उसकी शरीर रचना पर ध्यान देना होगा। मनुष्य शरीर की रचना शाकाहारी प्राणियों जैसी है, मांसाहारियों जैसी नहीं। निम्नांकित तथ्यों से स्पष्ट है कि मनुष्य विशुद्ध शाकाहारी प्राणी है। यह मांसाहार का रोग उसकी क्षुद्रता का परिचायक है।

(1) शाकाहारी प्राणियों की आतें लंबी होती हैं और मांसाहारी प्राणियों की छोटी होती हैं ताकि मांस के पाचन से उत्पन्न विषैले रोगाणु शीघ्र ही शरीर से बाहर निकल जाएं।

(2) शाकाहारियों के जबड़ों और दांतों की बनावट कुछ इस प्रकार की होती है कि वे भोजन को अच्छी प्रकार चबा सकें। इसके विपरीत मांसाहारियों के दांत लंबे, नुकीले तथा टेढ़े होते हैं और जबड़े मजबूत और विशाल होते हैं ताकि शिकार को पकड़कर सरलतापूर्वक नोचकर खाने में सहायक हो सके।

(3) शाकाहारी प्राणी पानी या तरल पदार्थों को घूंट-घूंट कर पीते हैं जबकि मांसाहारी जीव जिह्वा से लपलप कर पीते हैं, मनुष्य की तरह निगल नहीं सकते।

(4) मांसाहारियों की जीभ अधिक खुरदरी होती है किन्तु शाकाहारियों की जीभ नरम व मुलायम होती है।

(5) शाकाहारी अपने खाद्य पदार्थों के सभी अंगों को नहीं खाते। अनावश्यक भागों को या तो निकाल देते हैं या छोड़ देते हैं। इसके विपरीत मांसाहारी जीव सभी अंगों का भक्षण कर जाते हैं।

(6) मांसाहारी जीवों की आंखें कुछ इस प्रकार की बनी होती हैं कि वे अंधेरे में अच्छी प्रकार देख सकते हैं। शाकाहारी जैसा दिन में देख लेते हैं, वैसा उनकी आंखें रात में नहीं देख पातीं। मांसाहारियों की आंखें अंधेरे में चमकती हैं, शाकाहरियों की नहीं।

(7) मांसाहारी प्राणियों के बच्चे आंख मूंदे पैदा होते हैं। शाकाहारियों के बच्चों की आंखें खुली होती हैं।

(8) शाकाहारी प्राणियों के दांत आयु के अनुसार निकलते हैं जबकि मांसाहारी प्राणियों के दांत जन्म से ही निकलगते हैं।

(9) मांसाहारी जीव स्वजातियों से बैर रखते हैं जैसे कुत्ता, बिल्ली, शेर आदि

किन्तु निरामिषहारी जानवर गाय, भैंस, बकरी, हिरण आदि आपस में मिलकर एक साथ समूह में रहते हैं।

(10) मांसाहारियों के शरीर से पसीना नहीं निकलता। उनकी जीभ तथा तलवों से पसीना आता है।

(11) मांसाहारियों के पंजों में बड़े-बड़े नुकीले नाखून होते हैं जिससे वे अपने शिकार को सरलता से घायलकर, उन्हें नोंचकर विदीर्ण कर सकें।

(12) मनुष्य एक मात्र उन्हीं पशुओं का मांस खाता है जो विशुद्ध शाकाहारी अथवा तृणजीवी होते हैं। उन पशुओं के मांस में जो स्वाद होता है, वह उन्हीं वनस्पतियों के गुणस्वरूप होता है जिन्हें वे खाते हैं। मांसभक्षी पशुओं का मांस कोई भी मनुष्य नहीं खाता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य विशुद्धरूप से शाकाहारी है और मांस भक्षण उसकी प्रकृति नहीं है। प्रकृति के विपरीत चलकर कोई प्राणी सुखी नहीं रह सकता। अन्ततोगत्वा उसे दुःख और संकटों को झेलना ही पड़ता है। यही कारण है कि मांसाहारी व्यक्ति पूर्णतया स्वस्थ और दीर्घजीवी नहीं हो पाते। अब हम मांसाहार से होने वाली हानियों की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हैं।

मांस भक्षण से शरीर के रक्त विषैले हो जाते हैं जिसके कारण शरीर में तरह-तरह के रोग जैसे टी.बी., गठिया, सांस फूलना, खून की कमी, हिस्टिरियां आदि तमाम रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कालान्तर में पाचनशक्ति के कमजोर हो जाने से "शरीर व्याधि मन्दिरम" की कहावत चरितार्थ होने लगती है और मनुष्य शरीर रोगों का घर बनकर जीवन को नरक मय बना देता है। इसीलिए वेद का उपदेश है—"मांस नाश्नीयात्" अर्थात् मांस नहीं खाना चाहिये। यह हिंसक क्रूर पशुओं तथा निशाचरों का आहार है।

कुछ लोगों का मानना है कि मांस के सेवन से शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती है। यह भी कोरा भ्रम है। हाथी, घोड़ा भौंसा और बैल का मुकाबला शेर चीता और भेड़िया जैसे जानवर नहीं कर पाते। संसार का सबसे विशाल और शक्तिशाली जीव हाथी जो विशुद्ध शाकाहारी होता है। मनुष्यों में हमारे देश के शाकाहारी पहलवान राममूर्ति, गामा का मुकाबला मांसाहारी पहलवान जेविस्को आदि विदेशी पहलवान नहीं कर सके। इतिहास इसका साक्षी है।

मांसाहारी तामसी भोजन है जिसके द्वारा काम, क्रोध, आलस्य, प्रमाद जड़ता आदि की वृद्धि होने से मनुष्य पशु स्तर का हो जाता है। जिसका ताजा उदाहरण आज प्रत्यक्षरूप में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। बड़े से बड़े अधिकारी और राजनेता

आकंठ भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। जिस देश की संस्कृति ने विश्व को ज्ञान का प्रकाश दिया हो, वह देश भ्रष्टाचार का अड्डा वना हो, यह कैसी विडम्बना है। इसका मूल कारण है हमारे देश में वढ़ता हुआ मांसाहारी आज विदेशी शाकाहारी की तरफ दौड़ रहे हैं और हमारी सरकार मांसाहार को बढ़ावा देकर आय के श्रोत को बढ़ाने में ही लगी है। भ्रष्टाचारियों को कड़ी से कड़ी सजा देकर आय के श्रोत को ढूंढ पाना इससे बड़ी जड़ता क्या हो सकती है।

स्वाद की दृष्टि से भी मांसाहारी व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि मांस में स्वाद होता तो जैसे फल मेवे स्वादिष्ट होते हैं, उसी प्रकार कच्चे मांस भी खाने में स्वादिष्ट लगते किन्तु ऐसा नहीं होता। हां कच्चे मांस को पकाने पर जो स्वाद मिलता है वह घी, तेल और मसालों के कारण ही होता है।

कुछ लोगों का कहना है कि ध्रुव प्रदेशों तथा अमरिका आदि शीत प्रधान देशों में मांस का सेवन आवश्यक है। इस विषय में मि. स्टिफेंसन का कहना है—"जो लोग ऐसा समझते हैं कि बिना मांस खाये जीवन जीना कठिन है, वे भूल करते हैं। मांसाहारी अल्पायु होते हैं। अमेरिका में रहते हुए मैंने यह अनुभव किया कि चाहे सर्दी हो या गर्मी, मांस खाना आवश्यक नहीं है।" गायत्री परिवार के संस्थापक आचार्य श्रीराम शर्मा अनेकों बार हिमालय की यात्रा पर रहे किन्तु उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि ऋषि और महापुरुष उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कहा जाता है कि कभी हमारे देश में घी-दूध की नदियां वहती थीं, उसका मूल कारण था उस जमाने में शाकाहारी का प्रचलन अधिक था जिसके कारण गाय, भैंस आदि दुधारू पशुओं की रक्षा की जाती थी जिसके कारण दूध, घी की बहुलता थी और लोग स्वस्थ तथा दीर्घजीवी होते थे। आज छोटे-छोटे बच्चे तक टी.बी. और कैंसर रोग से पीड़ित देखे जाते हैं। रोज नई-नई बीमारियां जन्म ले रही हैं जिनका निदान ढूढ़ पाना कठिन हो रहा है शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक स्वस्थ तथा दीर्घजीवी देखे जाते हैं। अभी हाल ही में रूस में एक व्यक्ति की मृत्यु 160 वर्ष की आयु में हुई है। उसके दीर्घ जीवन का रहस्य था उसका शाकाहारी होना। पुराने जमाने में हमारे ऋषि मुनि शाकाहारी की बदौलत सैकड़ों वर्ष स्वस्थ रहते हुए दीर्घ जीवी होते थे। आज भी इस दृष्टि से प्रायः स्वतन्त्रता सेनानी लंबी आयु के देखे जाते हैं क्योंकि उनमें अधिकांश शाकाहारी ही होते हैं जबकि आज के बुद्धजीवी वर्ग को 60 वर्ष पूर्ण कर पाना भी कठिन हो जाता है और वे अकाल में ही कालकवलित हो जाते हैं।

आधुनिक भारत के भाग्यविधाता महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश के 12वें समुल्लास में लिखा है कि "मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं। चारों वेदों में मांस, मछली, अंडा आदि खाने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। पुनः सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ 324 पर स्वामी जी ने लिखा है कि "शराबी और मांसाहारी के हाथ का भोजन खाने-पीने से भी शराब, मांसादि के खाने पीपने का दोष लगता है।

सत्य अहिंसा के पुजारी विश्ववन्ध्य महात्मा गांधी की दुहाई देने वाली हमारी सरकार जिन वस्तुओं का निर्यात करती है, उसमें गो माता का मांस, हड्डी, चम्ड़ा आदि का भी निर्यात बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। जब हमारे देश में विदेशियों का साम्राज्य था, तब हम स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान यह कहकर अंग्रेजों के खिलाफ भारतवासियों को भड़काते थे कि अंग्रेज सरकार गो-हत्या शराब, सीनेमा के द्वारा हमें धर्मभ्रष्ट और निकम्मा बना रही है। यहीं नहीं सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन इसी मुद्दे को लेकर हुआ था कि अंग्रेज सरकार बन्दूक के कारतूस में गो-मांस का प्रयोग कर, हमें विधर्मी बना रही है जिसके फलस्वरूप सैनिक विद्रोह हुआ और अंग्रेजों के दांत खट्टे हो गए। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि आज हमारे अपने ही शासक अंग्रेजों से भी गयी गुजरी स्थिति में लाकर देशवासियों को खड़ा कर दिया है। महर्षि ने ठीक ही लिखा है—"विनाश काले विपरीत बुद्धिः" यह मांसाहार और शराब का ही दुष्प्रभाव है कि हमारे देश के कर्णधार जिनके हाथों में इस देश की बागडोर है, आंकठ भ्रष्टाचार में लिप्त हैं और घोटालों के सिलसिले का अन्त दिखाई नहीं देता। ऋषि-मुनियों की यह पावन भूम्ि आजं अपने ही देश के आततायियों द्वारा कलंकित की जा रही है। आज हम कि मुंह से कह सकेंगे कि "एतद्देश प्रसूतस्य एकाशादग्रजन्मनः स्वंस्वयरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः" यह सब मांस, अंडे तथा शराब के सेवन का ही दुष्प्रभाव है कि इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है जिससे उनका व्यक्तिगत जीवन खोखला हो गया है। ऐसी दशा में सार्वजनिक जीवन में पवित्रता कहा से आ सकती है। आज हमारे देश के कर्णधारकों की दशा देखकर लज्जा को भी लज्जा आती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मांसाहारी राक्षसी भोजन है। यह राक्षसी वृत्ति की ओर मनुष्य को प्रेरित करता है। क्रूरता को जन्म देता है तथा मानवीय मूल्यों का नाश कर मनुष्य की बुद्धि तथा चिन्तनशक्ति का ह्रास कर पतन के गर्त में ढकेल देता है। "छिद्रेष्णुनर्था बहुली भवन्ति" के अनुसार मांसाहारी धीरे-धीरे शराबी, वेश्यागामी होकर अपना तथा समाज के सर्वनाश का कारण बनता है। आज इसी

कुफल का परिणाम हमारे सामने विद्यमान है। शारीरिक मानसिक, नैतिक, सामाजिक किसी भी दृष्टि से मांस भक्षण त्याज्य है। यह विदेशी संस्कृति की देन है जिसके कारण हम पराधीन बनें इस पिशाविचनी विदेशी संस्कृति की ही देन है कि आज भी हमारी स्वतन्त्रता खतरे से बाहर नहीं है। स्वराज मिलने के बाद महात्मा गांधी की सुराज की कल्पना साकार न हो सकी, इसका मूल कारण है, हमारी राक्षसी आहार-विहार। कहा गया है ''जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन'' खानपान की गड़बड़ी से हमारी मानसिकता विकृत होती जा रही है और हम उर्द्धगामी न होकर अधोगामी बनते जा रहे हैं जिसका परिणाम आज भी भारतवासियों को भोगना पड़ा रहा है और आजाद भारत की सुख-शान्ति का स्वप्न साकार न हो सका।

आज की विकट समस्या भ्रष्टाचार का उन्मूलन है। राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार का अन्त तब तक संभव नहीं है जब तक मांसाहार पर कड़ा प्रतिबन्ध नहीं लगेगा। इस निर्दयी राक्षसी वृत्ति पर कड़ा प्रहार करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को भी आगे आना चाहिए।

—शिवव्रत शर्मा

पाठकों की प्रतिक्रिया

श्रीमान् जी, दिनांक : 01-02-2008

सादर नमस्कार

आपने योग संस्थान की जो पुस्तकें भिजवाई हैं, उस के सम्बन्ध में, मैं आपका आभारी हूँ। ज्ञान का यह ख़जाना पाकर मैं धन्य हो गया।

मैं आपके योग संस्थान और अपने प्यारे अन्जु-विजय अरोड़ा जी का भी धन्यवाद करता हूँ।

मैं चाहूँगा कि यह पुस्तकें महीने दर महीने भिजवाते रहें, आपकी कृपा होगी।

धन्यवाद! शुभचिन्तक

—लक्ष्मी नारायण

व्यक्ति तथा समाज के कल्याण का पथ

भारतीय शास्त्रकारों ने समाज के कल्याण के निमित्त वर्ण व्यवस्था एवं व्यक्ति की उन्नति के लिए चार आश्रमों का निर्माण किया उसी प्रकार व्यक्ति एवं समाज दोनों के कल्याण हेतु चार प्रकार के पुरुषार्थ की योजना कर उसके जीवन का ध्येय निश्चित किया। पुरुषार्थ का अर्थ ही है कि व्यक्ति अपने पौरूष से, अपने कर्मों से जिसे अर्जित करता है। जीवन लक्ष्य निश्चित होने से मानव-जीवन अनियंत्रित नहीं होता है उसका जीवंन सफल होता है। यदि जीवन में लक्ष्य होगा जीवन नियंत्रित होगा। अनियंत्रित जीवन वाले व्यक्ति का जीवन प्रचण्ड झंझावात युक्त सागर में प्रवाह पतित नौका की तरह हो जाएगा, इसलिए शास्त्रकारों ने मनुष्य के जीवनं का पूर्ण रूप से अध्ययन कर चार प्रकार के पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की रचना कर मनुष्य का बहुत उपकार किया है।

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ऐसा चरक ने अपने शास्त्रों में कहा हैं। आरोग्य अर्थात् सुन्दर स्वास्थ्य वाला व्यक्ति ही इन पुरुषार्थों को पा सकता है।

गणपति अथर्वशीर्ष में भी कहा है की इसे पढ़ने वाला व्यक्ति ही धर्म अर्थ काम मोक्ष को पाता है—धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इसी प्रकार सत्साहित्य काव्य आदि व्यक्ति में धर्म अर्थ काम मोक्ष निर्माण के साथ ही विवेंचक वृद्धि उत्पन्न करता है। श्रीमखगवद्गीता पर ऐसा आरोप लगाया जाता है कि गीता केवल मोक्ष मार्ग की ओर ले जाता है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने गीता की व्याख्या में रह स्पष्ट उल्लेख किया है कि समस्त पुरुषार्थ सिद्धि के निमित्त गीता आवश्यक है। गीता दोनों प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों में सामंजस्य बैठाती है।

समस्त पुरुषार्थों को प्रेरणा देने वाली शक्ति ही प्रकृति है। स्मृतियों में केवल त्रिवर्ग पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम का ही उल्लेख आया है। मनु महाराज ने कहा है—

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव वा।
अर्थ एवेह वा श्रेष्ठस्त्रिवर्ग इतितुस्थितिः 112/224

धर्म अर्थ काम में श्रेयस्कर कौन है ऐसा प्रश्न उपस्थित हो तो तीनों ही श्रेयस्कर हैं यह कहा जाता है। मोक्ष सर्व सामान्य के लिए सुगम नहीं होने से केवल तीनों पुरुषार्थ सभी को करने को कहा गया होगा।

भोग तथा सुख प्राप्ति के लिए जो भी साधन हैं उनको अर्थ नाम दिया गया।

सुखोपभोग की प्राप्ति अर्थ से ही होती है। अर्थ अर्थात धन कैसा हो? धन न्यायोपार्जित हो। मनुष्य की स्वाभाविक वृति है वित्तेषणा धनेषणा किन्तु गृहस्थियों के लिए नियम था कि वे अगर्हित कर्म से ही धनोपार्ज करें। अर्थ की शुचित समस्त शुचिता में श्रेष्ठ है ऐसा मनु ने भी कहा है–

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।

केवल धनोपार्जन में शुचिता की बात नहीं कही गई अपितु व्यय करने में नियंत्रण किया गया था–

त्यागकर भोग करो, किसी के धन की ओर मत ललचाओ त्याग से धन की उपादेयता है। आदर्श चरित्र का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने कहा है–

त्यागाय सभृतार्थानाम्-रघु-1-7

धन का उपयोग दो प्रकार से होता है व्यक्तिगत तथा समाज के निमित्त। धन की सहायता से सुख प्राप्त होता है। किन्तु जो धन रहित है निर्धन हैं उनका क्या होगा? निर्धन भी तो हमारे समाज के अंग हैं। हमारी यह धारणा सर्वेऽपि सुखिनः संतु यह तभी चरितार्थ होगी जब निर्धनों को दान देंगे। निर्धन भी धन की अभिलाषा करते हैं किन्तु परिस्थितिवश धन नहीं कमा सकते हैं। परिस्थिति जन्य पीड़ित की सहायता के लिए शास्त्रों में उपदेश है। दान का अर्थ ही निर्धनों को दान देना है। भोजन वस्त्रादि देना भी दान है। सेवा कर मनुष्य चार प्रकार के ऋण के द्वारा या पांच महायज्ञों में नृयज्ञ के रूप में समावेश कर शास्त्रकारों ने सम्मान जनक स्थान दिया है। अथर्ववेद में भी आतिथ्य की यज्ञ के साथ तुलना की गई है। इससे भी इसकी महत्ता स्थापित होती है।

अर्थ के पश्चात् काम के विषय की चर्चा है "श्रोतंचक्षु स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च" इन पांच ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति को काम कहा गया है। हमारे शास्त्रकारों ने "सर्वेऽपि सुखिनः संतु" इस संकल्प से ही शास्त्रों की रचना की। मनुष्यों को सुख देने वाली इच्छाओं की निंदा नहीं की। इन इन्द्रियों की तृप्ति अवश्य करनी चाहिए इस भाव को ध्यान में रखकर ही काम को भी पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया। ईश्वर का भी हमने "आप्त कामः" के रूप में वर्णन किया। चारों पुरुषार्थों में मैं काम हूं ऐसा वर्णन करने के पश्चात् भी उस पर धर्म का प्रतिबंध लगाया। काम धर्म के विरुद्ध न हो–"धर्माविरूद्धो भूतेषू कामोऽस्मि भरतर्षभ" काम वासना तृप्ति का साधन है। रूपवती महिला को देखकर उस पर अधिकार जमाना अथवा किसी धनवान के धन का हरण करने की प्रवृत्ति को

रोका जा सके इस कारण—मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत् कह कर ऐसा करने से समाज को रोका। धर्म से व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याणार्थ चारों पुरुषार्थों का उपदेश दिया गया। काम के भी दो प्रकार व्यक्तिगत तथा समाज के लिए उपयोग करने को कहा गया। सुख प्राप्त करना यह काम का व्यक्तिगत उपयोग है। सुसंतान प्राप्त करना समाजगत उपयोग है। यही भारतीय विचारधारा की विशेषता है। योग्य संतान समाज की शक्ति होती है। यदि संतति निरोग, बलवान और दृढ़ होगी तो समाज भी वैसा ही बनेगा। केवल व्यक्तिगत भोग का विचार किया तो समाज छिन्न-विछिन्न हो जायेगा। अतः काम पर समाज के कल्याण का बंधन लगाया गया। समाज के कल्याण के लिए व्यक्तिगत सुखोपभोग को काम करना होगा। यह सुखोपभोग पर धर्म का अंकुश है—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।

—गीता 3-37

कामोपभोग चार पुरुषार्थों में एक है। व्यक्ति के षड्रिपुओं में से एक शत्रु भी है—कामोपभोग। अतः पुरुषार्थ का सेवन करने पर भी यदि वह षड्रिपुओं में से एक है तो उसे त्यागना। भोग यदि शत्रु बन जाय तो वह व्यक्ति के सुख और स्वास्थ्य को नष्ट करता है तथा समाज की भी अधोगति निश्चित है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

—गीता 16-21

भारतीय संस्कृति की यही विशेषता है कि अर्थ और काम को धर्म द्वारा नियंत्रित किया गया है। मानव मात्र के लिए ये दोनों ही पुरुषार्थ महत्वपूर्ण है। सुख की प्राप्ति और दुःख कष्टों का निराकरण का प्रयास मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस विषयों में किसी आदेश या उपदेश की आवश्यकता नहीं होती है। मनुष्य येनकेन प्रकारेण इस निमित्त निरंतर संघर्ष करता रहता है। व्यक्ति के इस प्रयास से वास्तविक कल्याण तभी होगा जब व्यक्ति अन्यों के दुःख का कारण न बने। शासन द्वारा भी इस निमित्त कुछ विधि निषेध लगाए जाते हैं यह भी सत्य है कि नियम, कानून, दण्ड आदि के द्वारा व्यक्ति को रोका नहीं जा सकता। इस निमित्त ऐसी स्वतंत्र व्यवस्था हो जो मनुष्य प्रवृत्ति को नियंत्रित करके सदाचरण की प्रेरणा दे, तभी समाज की उन्नति संभव है।

भारतीय शास्त्रकारों ने मनुष्य की इसी प्रवृत्ति का भलीभांति अध्ययन करके धर्मतत्व का आविष्कार किया। सुख प्राप्ति की मनुष्य की प्रवृत्ति की अनुमति देने के साथ ही उस पर नियंत्रण रख जा सके अतः उसे धर्म एवं मोक्ष के मध्य रखकर उसका पालन करने को, उसके अनुसार चलने को कहा गया। किंतु पाश्चात्य विचारों में ऐसे नियमन के कोई तत्व नहीं हैं। किंतु उनका लौकिक जीवन पर हस्तक्षेप नहीं है। नैतिकमूल्यों के उपदेश तो हैं किंतु क्रियान्वयन के लिए कोई भी प्रक्रिया न होने से उसका लोगों के जीवन पर प्रभाव नहीं दिखाई देता है। इसी कारण अर्थ-काम का व्यवहार बिना अंकुश के होता है। परिणाम स्वरूप भौतिक जीवन में आकण्ठ डूबे रहने से सम्प्रति भले ही सुखी दृष्टिगोचर होते हैं किंतु उनके जीवन में मानसिक शांति का अभाव ही रहता है।

भारतीयों के जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष होने से एवं ऐहिक जीवन धर्म से नियंत्रित होने से, संय़मित होने से उन्हें पतन से बचाता है। मोक्ष का अर्थ यह समझा जाता है कि मूल्य के पश्चात् पुण्यात्म दिव्य सुखोपभोग साधन युक्त स्थान में चली जाती है। जीव परमात्मा का ही अंश है, इस तथ्य को अज्ञानतावश न जानने के कारण भ्रम रहता है। अज्ञान नष्ट होने पर, साक्षात्कार होने पर वह परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है।

'जातस्य हि ध्रुर्वोमृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य चः।

—गीता-2/27

मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति कर्मों के अनुसार पुनः नया जन्म धारण करता है जन्म का यह चक्र चलता रहता है, किंतु जब प्राणी वासनाओं से मुक्त हो जाता है तो वह जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है यही मोक्ष है। कुछ विद्वान षड्रिपुओं के प्रभाव से मुक्त होने को ही मोक्ष मानते हैं। मनुष्य दुःखों के निवारण एवं सुखों के सम्पादन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। कर्तव्याकर्तव्य के विषय को करणीय और त्याग विषय को धर्म द्वारा बताए गए मार्ग के कारण मनुष्य अच्छी प्रकार समझता है तथापि धर्माचरण में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती है। दुर्योधन की जैसी उसकी स्थिति रहती है।

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यर्ध न च मे निवृत्तिः।

ज़ैसे जल का नीचे की ओर प्रवाहित होना स्वाभाविक है उसी प्रकार पतन

की ओर जाना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिससे विनाश ही होता है। धर्माचरण तो प्रवाह के विरूद्ध तैरना है। पानी को ऊपर ले जाने के लिए उसे पम्प करना पड़ता है, शक्ति लगानी पड़ती है। व्यक्ति यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे विकारों के ऊपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है।

ऋषिमुनियों ने इसी कारण षड्विकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर को षड्रिपू कहा, इन्हें शत्रु संज्ञा दी। ये विकार मनुष्य के भीतर अदृश्य रूप में विद्यमान रहते हैं और मन की दुर्बलता के समय प्रकट हो जाते हैं। तपस्वी योगी भी इससे बच नहीं सकते। मन ही सभी आपत्तियों का कारण है— **मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।** इसलिए शास्त्रकारों ने बार-बार मनोनिग्रह तथा इन्द्रियों पर विजय का आग्रह किया। शीत-ग्रीष्म, सुख-दुःख, जय-पराजय लाभ-हानि मान-अपमान में समान भाव रखने वाले को इन्द्रिय जयी कहा गया। इन्द्रिय निग्रह से, संयम से, षड्रिपुओं के ऊपर विजय के प्रभाव से मोक्ष प्राप्त होता है। विकारों का प्रभाव यदि नहीं हो तो व्यक्ति की प्रज्ञा भी स्थिर होती है। इस प्रकार विकार रहित मनुष्य आद्वितीय सुख एवं अद्वितीय आनन्दानुभूति पाता है। आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर परमात्मा में विलीन हो जाता है। यही मानव जन्म की कृतार्थता है।

—हिन्दु चेतना से साभार

योग-विद्या-शिक्षा के छः वर्ष.....

करके किसी वस्तु का भोग और अपव्यवहार महापाप है। अर्थ के तुम रक्षक हो, भक्षक नहीं हो। प्रभु के अर्थ को प्रभु के कार्यों में खर्च करो। जिसका अभाव है उसके अभाव को मिटा दो, तब अपरिगह-सिद्धि होगी। मुमुक्षु लोग प्रयोजनातिरिक्त विषयों को सर्वतोरूप से छोड़ देते हैं। इससे भोग्य वस्तुओं के मानसिक बंधन से मुक्त होकर वे लोग चित्त को निर्मल बना लेते हैं। चित्त के निर्मल होने से उनके चित्त में पूर्व-पूर्व जीवन और भविष्य जन्मों का ज्ञान जागृत होता है।

(क्रमशः)

—आदित्य मुनि

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती —गतांक से आवृत्त

योग-विद्या-शिक्षा के छः वर्ष

(संवत् 1905 वि० से 1911 वि० पर्यन्त)

प्राणायाम-परिदर्शन—वाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भ इन तीन प्राणायाम वृत्तियों को ध्यान में रखकर इनकी स्थिति को क्रमशः दीर्घ से सूक्ष्म की तरफ ले जाना और इसके कौशल को स्थान (देश), काल और संख्या के अनुसार उत्कर्ष की तरफ ले जाना—इसी का नाम प्राणायाम-परिदर्शन है।

देश (स्थान)-परिदर्शन—देश दो प्रकार के हैं—वाह्य देश और आभ्यन्तर देश। वाह्य देश का दूसरा नाम आधिभौतिक देश और आभ्यन्तर देश का दूसरा नाम आध यात्मिक देश है। स्वाभाविक प्रश्वास के समय प्रश्वास-वायु नासिका से करीब 12 अंगुल तक बाहर जाता है। नाड़ी-शुद्धि के अभ्यास से प्रश्वास-वायु क्रमशः 12 अंगुल से 11, 10, 9, 8 और इसी रूप से अन्त में नासिका से बाहर आयेगा ही नहीं। नासिका के अन्दर ही प्रश्वास-वायु समाप्त हो जायेगा। इसी रूप से प्रश्वास में वायु के प्रति दृष्टि रखने का नाम वाह्य-देश परिदर्शन है। फिर श्वास लेने के समय जब श्वास-वायु हमारे वक्षःस्थल की तरफ आता है, उस पर ध्यान रखने से उसी का नाम आध्यात्मिक परिदर्शन है।

काल-परिदर्शन—प्रणव मन्त्र या गायत्री मन्त्र का जप करते हुए जो काल का परिमाण हिसाब में रखा जाता है उसी का नाम काल-परिदर्शन है। पूरक में 4 बार, कुम्भक में 16 वार और रेचक में 8 वार मन्त्र जप करना या पूरक में 6 वार, कुम्भक में 24 वार और रेचक में 12 वार मन्त्र जप करना। इसका अनुपात—1 : 4 : 2। साधक अपनी शक्ति के अनुसार जप करें। जप पूरक में जितने वार होगा, कुम्भक में उसके चार गुणा होगा और रेचक में उसका द्विगुणा जप होगा। इसी का नाम काल-परिदर्शन है।

संख्या-परिदर्शन—यह काल-परिदर्शन के ही अनुरूप है। इसमें जप की संख्या नहीं रखनी है परन्तु श्वास-प्रश्वास की संख्या रखनी है।

गुरु जी ने मुझको सावधान कर दिया था कि प्राणायाम का अभ्यास बहुत ही सावधानी से और धीरे-धीरे करना चाहिए। सद्गुरु के उपदेश के अनुसार इसका अभ्यास होना चाहिए, जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। यथा-शक्ति धीरे-धीरे पूरक, कुम्भक और रेचक करना और धीरे-धीरे इनकी संख्या और काल को बढ़ाना। इस

रूप से धीरे-धीरे दीर्घ काल के अन्दर अभ्यास करने से जो प्राणायाम की सिद्धि होती है, उसका नाम दीर्घ-प्राणायाम है। प्राणायाम में जब श्वास-प्रश्वास बाहर आता ही नहीं, नासिका के अन्दर ही रहता है और कुम्भक करने में अधिक कष्ट नहीं होता है—तब उसका नाम सूक्ष्म प्राणायाम है।

विषयाक्षेपी प्राणायाम—देश, काल और संख्या के प्रति दृष्टि रखकर बहुत दिन प्राणायाम करते-करते जब साधक अभ्यस्त हो जाते हैं तब देश, काल और संख्या के प्रति दृष्टि न रखने से भी प्राणायाम सुचारू रूप से साधित होता है। इसी का नाम विषयाक्षेपी प्राणायाम है।

प्राणायाम से लाभ—गुरु जी ने प्राणायाम-शिक्षा के प्रारम्भ में ही प्राणायाम की उपकारिता को वर्णित किया था। तमोगुण के आधिक्य के कारण सत्वगुण के प्रकाश और रजोगुण की कर्मशीलता पर आवरण आ जाता है। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और इन्द्रियों को जाड्य और आलस्य छूट जाता है। तमोगुण का कार्य तन्द्रा और निद्रालुता भी नष्ट हो जाती है। स्वल्प निद्रा के कारण तब कष्ट नहीं होता है। देह कर्मपटु होता है, मन मोहशून्य होता है और बुद्धि स्वच्छ होती है। विचार-शक्ति और विवेक-शक्ति की वृद्धि होती है, विवेक-शक्ति की वृद्धि से तत्त्व-ज्ञान और सूक्ष्म दर्शन का उदय होता है, मिथ्या और विपर्य ज्ञान का लोप होता है और शुद्ध ज्ञान का उदय होता है।

चित्त की निर्मलता—स्वर्णादि धातुओं में मल या खोट मिश्रित रहने से उसकी उज्ज्वल आभा आवृत हो जाती है और देखने में मलिन लगती है और उसको अग्नि में दग्ध करने से मल दग्ध हो जाता है और सुवर्णादि धातुओं की स्वाभाविक उज्ज्वलता प्रकाशित होती है। ठीक इसी प्रकार हमारा विवेक मोह के आवरण से आवृत होकर आभाशून्य हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा मोह का आवरण नष्ट हो जाता है। प्राणायाम से हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन और चित्त की मलिनता और अशुद्धि भी कट जाती है और विशुद्धि के भाव का उदय होता है। स्वाभाविक स्थिति में हमारी इन्द्रियों में मलिनता रहती है इसलिए ये इन्द्रियां दुर्बल हैं। यह मलिनता कट जाने पर ये प्रवल हो जाती हैं और इनको प्रकृति के सूक्ष्म उपादान दर्शन करने की शक्ति मिलती है। तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धादि के तन्मात्रादि दर्शन करने की शक्ति भी मिलती है। दूर-दर्शन और दूर-श्रवणादि की शक्ति भी उत्पन्न होती है। जब तक मलिनता रहेगी तब तक दूरदर्शनादि अतीन्द्रिय शक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। प्राणायाम के द्वारा यह मलिनता क्षीण हो जाती है और सूक्ष्म तत्त्वों का दर्शन होता है। गुरुजी की कृपा से मुझे इसका फल प्राप्त हुआ था।

गति-विच्छेद

नासिका के द्वारा श्वास को भीतर लेने का नाम "पूरक" और उसको छोड़ने का नाम "रेचक" है। पूरक के बाद रेचक न करना या रेचक के बाद पूरक न करना, इसका नाम "गति-विच्छेद" है। गति-विच्छेद में श्वास-प्रश्वास बन्द किया जाता है। एक का नाम "पूरकान्तक कुम्भक" और दूसरे का नाम "रेचकान्तक कुम्भक" है। श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद बाहर होता है और चित्त का गति-विच्छेद भीतर होता है। चित्त सर्वदा चंचल है। चित्त की चंचलता का नाम ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर होने से प्राणशक्ति का गति-विच्छेद होता है और चित्त स्थिर होने से चित्त का गति-विच्छेद होता है। जिस समय कुम्भक होगा ठीक उसी समय भीतर चित्त को भी स्थिर रखना है। प्राण-शक्ति ही चित्त को चंचल करती है। चित्त को स्थिर करना और प्राण-शक्ति को स्थिर किया जाता है और भीतर चित्त को स्थिर करके प्राण-शक्ति को स्थिर किया जाता है। ध्यान के द्वारा चित्त को स्थिर रखना या चित्त को बिलकुल शून्यवत् रखना जरूरी है। कुम्भक के समय अगर चित्त में चंचलता रहे अर्थात् चित्त चारों तरफ घूमता-फिरता रहे तो विविध चिन्ता आकर चित्त पर आक्रमण करती हैं। इसलिए इससे सफल के बदले कुफल ही होगा और इससे अनिष्ट की सम्भावना है। इसलिए बाहर जैसे कुम्भक करना ऐसे ही भीतर भी चित्त कों पूर्णतया स्थिर रखना है। तब ही योगांग प्राणायाम हो पायेगा। प्राण-शक्ति को दोनों तरफ से ही रोकना—गतिहीन करना पड़ेगा। गुरुजी के निर्देशानुसार साधन से मुझे सुफल मिला।

इसलिए पहले आसन-स्थिर करके शरीर स्थिर करने का और ध्यान-अभ्यास करके मन स्थिर करने का नियम है। शरीर को और मन की स्थिर करके तब कुम्भक अभ्यास करने का नियम है। शरीर और मन को स्थिर न करके अगर कुम्भक किया जाये तो अनिष्ट होता है। मन की चंचलता में कभी कुम्भक नहीं करना चाहिए। बहुत से मनुष्य इस विषय में बहुत ही भूल करते हैं। वे लोग समझते हैं कि किसी भी तरह से बहुत समय तक कुम्भक करते रहने से ही सर्वसिद्धि मिल जाएगी। लेकिन चित्त स्थिर करने के बिना कुम्भक करके बहुतों को विपरीत फल ही मिलता है।

यम-नियमों की साधना

पांच यम और पांच नियमों को गुरु जी ने मनुष्य धर्म की नींव बताकर वर्णन किया था। फिर उन्होंने यम और नियमों को तपस्याओं के अंगभूत कह कर उनका वर्णन किया था। यम और नियमों को तपस्याओं के अंगीभूत कह कर उनका वर्णन किया था। यम और नियम के साधन से मन की स्वेच्छाचारिता की निवृत्ति और

संयम में प्रवृत्ति होती है। इनकी साधनाओं की बाधाएं भी बहुत हैं। बाधाओं के निवारणार्थ उपाय भी बहुत हैं। यम-साधना इस प्रकार की है—

(1) अहिंसा-साधना—मन-वचन-कर्म द्वारा किसी को हानि नहीं पहुंचाना और किसी के प्रति द्रोह-भाव न रखना ही अहिंसा है। सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अद्रोह अहिंसा के सहायक हैं। मैत्री (सुखी के प्रति), करुणा (दुःखी के प्रति), मुदिता (पुण्यवान् के प्रति) और उपेक्षा (पापी के प्रति) की साधना से अहिंसा-साधना की उन्नति होती है। अहिंसा-साधना करने में स्वार्थ त्याग की आवश्यकता है। दूसरे के शरीर के मांस को खाकर अपने शरीर की पुष्टि करने से अधिक दूसरी हिंसा नहीं है। जो दूसरे के प्रति हिंसा करता है, दूसरे लोग भी उसकी हिंसा करेंगे। उसको वन्धु नहीं मिलेगा। सब कोई उसके शत्रु बन जाते हैं। "अहिंसा परमोधर्मः"। अहिंसा पालन करके चित्त को शुद्ध करना चाहिए।

हिंसा तीन प्रकार की है—कृता, कारिता और अनुमोदिता। क्रोध, लोभ और मोह से हिंसा सम्पन्न होती है। हिंसा अनन्त दुःख और अज्ञानता का कारण है। हिंसा के इन दोषों को सोचकर हिंसा को त्याग देना चाहिए।

कृता-हिंसा—जिस हिंसा को मनुष्य स्वयं करता है। जैसे पशुवध, पक्षीवध आदि।

कारिता-हिंसा—खुद न करके जो हिंसा दूसरे के द्वारा करायी जाती है। जैसे अपने नौकरों के द्वारा पशुवध, पक्षीवध आदि।

अनुमोदिता-हिंसा—दूसरे की हिंसा की प्रशंसा करना। जैसे कसाई-खाने या मन्दिर में पशुवध को देखकर प्रसन्नता प्रकट करना।

इन तीन प्रकार की हिंसाओं में प्रत्येक हिंसा भी तीन-तीन प्रकार की है— क्रोधपूर्वक, लोभपूर्वक, मोहपूर्वक। जैसे क्रोध से किसी का वध करना, धनैश्वर्य के लालच से किसी को जान से मार देना और पुण्य के मोह से मन्दिर में बकरी-भैंसों का बलिदान देना।

देखा जाता है कि कोई-कोई मनुष्य वृद्धावस्था में कठिन असाध्य रोग से आक्रान्त होकर छटपटाते हैं। ये लोग प्रतिक्षण मृत्यु को ही चाहते हैं। किंतु इनके प्रति मृत्यु देवता की दया नहीं होती है। दीर्घकाल तक ये लोग असहनीय रोग-यन्त्रणाओं को सहन करके भी जीवित रहते हैं। इस जीवन में हो या पूर्व जीवनों में हो, ये लोग घोरतर हिंसा-कार्य करके इस स्थिति को प्राप्त होते हैं। हिंसा का फलभोग जब तक पूरा नहीं होता तब तक इनकी मृत्यु नहीं होती।

अहिंसा प्रतिष्ठित होने से सब प्राणी योगी के प्रति वैरभाव को छोड़ देते हैं। व्याघ्रादि हिंस्र पशु भी उनके प्रति हिंसाभाव को छोड़ देते हैं। ऋषि-मुनियों के आश्रमों

में हरिण-शिशु और व्याघ्र-शिशु एक साथ खेलते हैं। अहिंसा-साधना की सिद्धि के कारण योगी के आश्रम का वातावरण अहिंसामय हो जाता है।

(२) सत्य-साधना—मन, वचन, आचरण से सत्य के पालन से ही सत्य-साधना होती है। सत्य प्रतिष्ठित होने से योगी वाक्-सिद्ध होते हैं। उनके वाक्य अमोघ होते हैं। सत्य-प्रतिष्ठित योगी अन्याय से शक्ति के बाहर व्यर्थ संकल्प भी नहीं करते हैं। उनके आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही सफल होते हैं। अर्थात् जिस प्राणी को कर्मफलानुसार दुःख मिलेगा, योगी के मुख से उसके प्रति अभशाप ही निकलता है और जिस प्राणी को कर्म फलानुसार सुख मिलेगा, योगी के मुख से उसके प्रति आशीर्वाद ही निकलता है। मिथ्या वाक्य भी अगर दूसरे के लिए हितकर हो, तब वह मिथ्या वाक्य भी सत्य वाक्य बन जाता है। और सत्य वाक्य भी दूसरे के लिए अहितकर होता है, तो वह सत्य वाक्य भी मिथ्या बन जाता है। योगी आशीर्वाद से दूसरे को शुभ फल दे सकते हैं। योगी इच्छा करने से बीमारों की कठिन पीड़ा भी दूर कर सकते हैं। महापापी के अन्दर शुभ इच्छा के द्वारा पुण्य का संचार कर सकते हैं। योगी सर्वदा विचारपूर्वक दूसरे के लिए हितकर वाक्य ही बोलते हैं, अल्प वाक्य प्रयोग करते हैं और कभी-कभी मौन भी धारण करते हैं। सत्यप्रतिष्ठित योगी ज्यादा वाक्य नहीं बोलते हैं और वाचालता भी छोड़ देते हैं। सत्यस्वरूप परमात्मा के ध्यान में ही योगी अधिक समय बिताते हैं, सत्य धर्म के प्रचार में भी अपने जीवन को समर्पित करना चाहते हैं, ऐसे योगी का सब लोग विश्वास करते हैं।

(३) अस्तेय साधना—लोभ के कारण दूसरे की किसी वस्तु को चोरी करके लेना "स्तेय" है, और इसके विपरीत "अस्तेय" है। अधर्म से उपार्जित अर्थ से धर्मोपार्जन नहीं होता है। बिना बताये दूसरे की वस्तु को ग्रहण करना भी 'स्तेय' है। जिस वस्तु में अधिकार नहीं है, उस वस्तु को किसी उपाय से लेना भी 'स्तेय' है। इस रूप से पुरोहित या यजमान का एक-दूसरे को प्राप्ति के विषय में धोखा देने से, दूसरे की नौकरी करते हुए नौकर का स्वामी के कार्य को ठीक रूप से न करने से, व्यवसायी का व्यवसाय में धोखा देने से, चिकित्सक का रोगी को चिकित्सा कार्य में धोखा देने से, शिक्षक-छात्रों, गुरु-शिष्यों में एक दूसरे को धोखा देने से भी स्तेय हो जाता है। इन सब के विपरीत-प्रतिकूल व्यवहार ही अस्तेय है। स्तेय का फल अविश्वास और भीति है और अस्तेय प्रतिष्ठित होने से प्रकृति के सब रत्न ही साधक के

सम्मुख उपस्थित होते हैं। काय, मन, वाक्य से दूसरे के धन के अपहरण की मनोवृत्ति न रहने से जगदीश्वर साधक को सर्व आवश्यक वस्तुएं प्रदान करते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होने से साधक को सर्व आवश्यक वस्तुएं प्रदान करते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होने से साधक को देखकर ही दाता दान करके अपने को धन्य समझते हैं। अस्तेय-साधक सब के विश्वास-पात्र ओर प्रियपात्र बन जाते हैं और स्तेय के द्वारा मनुष्य दूसरे के अविश्वास, भय और घृणा के पात्र बन जाते हैं।

(4) **ब्रह्मचर्य-साधना**—काम-भावना के साथ कुछ-कुछ स्मरण करना, बात करना, देखना, गुप्त-मंत्रणा करना, संकल्प करना, श्रवण करना और व्यभिचार कर्म करना—यह सब के सब ब्रह्मचर्य-विरोधी हैं। इसके विपरीत शुद्ध भाव से और काम-वर्जित भाव से सब कुछ करना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से शारीरिक और मानसिक बल-लाभ होता है और धर्मभाव वर्द्धित होता है। सत्त्व, आयु, यश, कीर्ति, उत्साह, उद्यम, उच्चाशा, त्याग, शान्ति और आनन्द की वृद्धि होती है। अन्यथा इन सब गुणों के विपरीत दुर्गुणों की वृद्धि से मनुष्य का लोप और पशुत्व की वृद्धि होती है, सब ही घृणा और अवमानना का व्यवहार करते हैं। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से साधक महाशक्तिशाली होते हैं। साधक के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की वृद्धि होती है। इन्द्रियों की तेजोवृद्धि होने से सूक्ष्म और अलौकिक विषयों का प्रत्यक्ष होता है। प्रकृष्ट रूप से तत्त्वज्ञान की उपलब्धि होती है। ब्रह्मचर्य-हीन मानवों के शरीर निर्बल और विभिन्न रोगों के गृह बन जाते हैं। इनके मन निस्तेज, उत्साह-हीन, उच्चाशाहीन और अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य-हीनता से जीवन पशुओं के स्तर से भी नीचे उतर जाता है। व्यक्ति अर्द्धमृत और अन्त में विनष्ट ही हो जाता है।

(5) **अपरिग्रह-साधना**—केवल शरीरादि की रक्षा के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, तदतिरिक्त वस्तुओं का त्याग करना अपरिग्रह है। अधिक वस्तुओं की इच्छा अच्छी नहीं है। प्रयोजनातिरिक्त वस्तुओं के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। अधिक भोग्य वस्तु सम्मुख रहने से योगसिद्धि नहीं होती है। आवश्यकता से अतिरिक्त वस्तुओं का संचय करना महापाप है। स्तूपीकृत धन और भोग्य वस्तु दूसरे अभाव-ग्रस्त व्यक्तियों को दे देना चाहिए। क्योंकि जगत् की सब वस्तुएं ही भगवान् की हैं। दूसरे को वंचित

(शेष पृष्ठ 20 पर)

रोगों में फायदा करती है गाजर

गाजर हमारे शरीर के लिए बहुत फायदेमंद है। सदियों में इसके नियमित सेवन से मन प्रसन्न रहता है। हाल ही में जर्मनी के डॉक्टरों ने इस पर गहन शोध किया है, जिससे विदित हुआ है इसकी मिठास में प्राकृतिक इन्सुलिन रहता है जो पूर्णतया मधुमेह में फायदा पहुंचाता है।

गाजर में प्राकृतिक रूप से प्रति 100 ग्राम में 1.5 मिग्रा लौह और 80 मिलीग्राम कैल्शियम होता है। इसीलिए इसका रस नित्य सेवन करने से पीलिया रोग ठीक हो जाता है। वैसे गाजर कई औषधीय गुणों का भंडार है। यह निर्बल काया को नव स्फूर्ति भी प्रदान करती है। देश-विदेश में इसके हजारों औषधीय प्रयोग हुए हैं, जिनसे कई रोगों में भारी सफलता मिली है। आइए इसके औषधीय गुणों से आपका परिचय कराते हैं—

* बच्चों के सूखा रोग में गाजर का रस और संतरे का रस एक साथ मिलाकर दिन में तीन बार पिलाने से सूखा रोग में बहुत आराम मिलता है।
* 250 ग्राम गाजर के रस में पांच बूंद लहसून का रस मिलाकर दिन में पांच बार पीने से रक्त चाप वृद्धि में बहुत लाभ होता है।
* गाजर को प्याज के साथ चूसने से दांतों की पीड़ा और कीड़ा लगने से होने वाला दर्द भी दूर हो जाता है।
* कई बार गर्भवती महिलाओं को प्रसव वेदना तो शुरू हो जाती है लेकिन बच्चा पैदा नहीं होता। ऐसी नाजुक स्थिति में पांच ग्राम गाजर के बीजों को 250 ग्राम पानी में अच्छी तरह उबालकर कपड़े में छानकर पिलाने से शीघ्र सुविधपूर्वक प्रसव हो जाता है।
* गाजर के रस में एक ताजा नींबू का रस मिलाकर पीने से यकृत की गड़बड़ी दूर होती है।
* गाजर को भूनकर सेंधा नमक के साथ खाने से जुकाम दूर होता है।
* 200 ग्राम गाजर के रस में 100 ग्राम पालक का रस मिलाकर पीने से स्नायु दौर्बल्य में बहुत लाभ मिलता है।
* सूखी गाजर का पाउडर एक चम्मच फांकने से दिनों से रुका हुआ मासिक धर्म भी खुलता है।
* गाजर को दूध में उबालकर पीने से कब्ज रोग में आराम मिलता है।
* आंखों की ज्योति बढ़ाने के लिए प्रतिदिन 200 ग्राम गाजर 100 ग्राम पालक के साथ सेवन करें।
* शहद के साथ बनाया हुआ गाजर का मुरब्बा सेवन करने से चेहरे की आभा निखरती है।
* एक्जिमा की शिकायत होने पर गाजर का रस मलने से एक्जिमा गायब होने लगते हैं।
* मुख के मुंहासे दूर करने के लिए गाजर की पत्तियों को पीसकर मुंहासे पर मलें। ऐसा तीन हफ्ते तक नियमित करने से मुंहासे जड़ से गायब हो जाते हैं।

* गाजर के रस में लौह क्षार एवं कल्मी सोड़ा मिलाकर पीने से पथरी रोग में फायदा होता है।
* कई बार दस्त के साथ-साथ रक्त भी आने लगता है। ऐसे में दस ग्राम गाजर के रस के साथ पांच गाम आंवले का रस मिलाकर पीना चाहिए।
* अतिसार होने पर भुनी हुई गाजर को अदरक के साथ चूसना चाहिए।
* गाजर का हलवा खाने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।
* गाजर और मूली का रस पीने से अम्ल पित्त रोग में फायदा मिलता है।
* भोजन में अरुचि होने पर गाजर को सेंधा नमक के साथ खाने से अरुचि नष्ट होती है।
* अफरा होने पर गाजर के रस को गर्म करके उसमें एक नींबू का रस मिलाकर सेवन करें। अफरा दूर हो जाता है।
* शरीर में कमजोरी अनुभव होने पर 100 ग्राम गाजर के रस में 50 ग्राम टमाटर और 50 ग्राम नारंगी का रस मिलाकर नित्य पीने से कमजोरी दूर होती है।
* गाजर के रस में सलाद की पत्तियों का रस मिलाकर पीने से शरीर का मोटापा भी कम होता है।
* गाजर के रस में मिश्री की डली डालकर नित्य पीने से आवाज में मधुरता बढ़ती है।
* सांवली त्वचा में निखार लाने के लिए प्रतिदिन ताम्बई गाजर का 250 ग्राम रस पीना चाहिए।
* बच्चों के शारीरिक विकास के लिए प्रतिदिन गाजर के रस में शहद की पांच-सात बूंदें मिलाकर पिलाने से स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास ठीक होता है।
* गाजर में कच्ची हल्दी का रस मिलाकर नित्य सेवन करने से प्रमेह में लाभ होता है।
* बुढ़ापे में पेशाब रुक-रुक कर आता है। ऐसी स्थिति में गाजर के रस को थोडत्र गरम कर एक ग्राम कल्मी शोरा मिलाकर पिलाने से मूत्र आराम से आता है।
* गाजर खाने से शरीर के कद में भी विकास होता है।
* आंखों के सामने यदि काला-पीला अंधेरा दिखाई दे तो गाजर के रस में सेवफल का रस मिलाकर पीना चाहिए।
* गाजर के पौधे की गीली टहनी को घिसकर घुटनों पर मलने से घुटनों का दर्द भी दूर होता है।
* गाजर का रस सेवन यौवन-शक्ति में भी वृद्धि करता है।
* बच्चों को गाजर और मूली खिलाने से पेट के कीड़े नष्ट होते हैं।
* गाजर की खीर पीने से सिरदर्द भी दूर होता है।

—ईलू रानी



Mantras for Healing, Wisdom and Peace

Swami Niranjanananda Saraswati

Threemantras are beneficial for all aspects of life: the Mahamrityunjaya mantra for health and well-being, the Gayatri mantra for mental tranquillity and wisdom, and the pranava mantra, Om, for peace and spiritual awakening.

Mahamrityunjaya mantra

During the 1998 Sita Kalyanam function, Paramahamsaji recommended the Mahamrityunjaya mantra and the Gayatri mantra to everyone. Paramahamsaji said that those who wise for health and healing must chant the Mahamrityunjaya mantra sat least twenty-four times every day. He said, "I am giving you a guarantee that if yo do it with intensity of focus, will power, purity of heart and feeling, then there is no question that health and healing will be provided, whether for oneself or for others."

If you ask about the meaning of the Mahamrityunjaya mantra, most people will say it is a mantra dedicated to Lord Shiva and give a definition according to the literal meaning of each word. But more important is the vibration you create. The combination of sounds in any mantra creates a specific vibration in the body. Our body also has a vibrating in harmony with each other. The moment this harmony is broken at the vibratory level, destruction of the body takes place and we start to die. In death the pulsations of the body stop, the animation of the cells ceases and the life force leaves the body. The vibrations are the manifest symptoms of the life force.

Symbolically, these vibrations are represented in the various chakras or psychic centres. So when we use a combination of mantras or sound syllables, we are activating and bringing forth the potential of these vibrations that are inherent in the body. Some vibrations, like Om, are used to go in to a deep meditative state. The effect of Om internalizes the awareness. From a scientific

viewpoint , Om increases the alpha waves and decreases the beta waves. Subjectively, internalization of awareness takes place; we become more focuses, tranquil and peaceful. when we use a string of vibrations, as in the Mahamrityunjaya mantra, these vibrations realign the disturbances in the vibratory system. Disease and illness can be managed effectively with this mantra.

In our ashrams we practise the Mahamrityunjaya mantra every Saturdy night with a sankalpa, a feeling, to let the healing powers of this mantra heal our body and the bodies of those who are suffering or in pain. If we want to incorporate the practice of mantra in toe our routine in order to help others, we should also make the effort to chant the Mahamrit-yunjaya mantra. Every Saturady do at least one mala; it only takes about thirty-five minutes. This is for your personal well-being and for the well-being of everyone around you.

Gayatri mantra

The other mantra that Paramahamsaji recommended every-one to practise daily is the Gayatri mantra. Traditionally, the Gayatri mantra is used to develop intelligence, knowledge and wisdom, and to expand the consciousness. Gayatri is taught to children at the age of eight , when they enter the period of academic education. Perception and attention are sharpened, retention and memory power are enhanced, and there is growth in intelligence. In order to develop awareness, wisdom and understanding, practise the Gayatri mantra twenty-four time every day.

Paramahamsaji also said not to underestimate the power of mantras. It is not necessary to understand the meaning of the mantra, but to connect with the vibration that is being created by the mantra chanting. If you are able to connect with the vibration, then in the course of time you can also learn about the points you need to concentrate on during the chanting of different mantras. Then it will become a very valuable tool for your spiritual growth and development.

Mantra repetition

The third important mantra is Om. Om is the synthesis

of all mantras, leading to an enlightened state of consciousness. The tradition describes three methods of mantra repetition. The first is varbal, the second is whispering and the third is mental. Mental repetition is the most potent, provided we are able to steady our minds and there are no distractions to divert our attention from the mantra repetition, and provided we do not doze off as the mind becomes internalized, which is very common when practising the mantra mentally.

Although emphasis is given to mental repetition, the tradition also says that if you find the mind is drifting off and losing consciousness of the mantra, and if you find yourself dozing off, then in order to maintain awareness start to whisper the mantra. The whisper is a simple movement of the lips and should be audible only to yourself and nobody else. If you are still unable to control the introversion of the mind, and sleep comes, then begin to chant the mantra verbally. Even with verbal repetition some people cannot hold their mind steady or at one point. So in order to focus the attention a visual symbol is used.

Psychic symbol

Paramahamsaji used to give us the example of a bird flying over the ocean looking for somewhere to rest. It find a piece of wood floating on the water and lands there. After resting, the bird flies off again, but remembers the location of the piece of wood for next time. This example relates to the use of mantra and yantra in the form of a psychic symbol. The psychic symbol can be anything. It is a point, a figure, animage on which we are able to concentrate and hold our attention, because generally mantra is practised mentally.

A symbol can be our ishta devata, which has the quality of God or divinity. It can be an image which has a feeling of closeness and affinity, or a symbol which does not denote either a negative or a positive state of mind, but is neutral. At the same time it can also unconsciously inspire the psyche, the mind, to realize the potential of consciousness. Powerful symbols are the sun or the figure of the mantra Om, or even a yantra, whether it be a triangle, interlaced trangles, a circle,

a point or a complex geometrical figure. It can be the image of the guru who represents the source of inspiration. It can ge the image of Jesus, a saint, or the image of different incarnations of God in the form of Rama, Drishna, Buddha and so on. It can be anything, but it should not have a personal emotional content.

Some people may imagine a family member, but then there is a selfish emotional association which should not be persent. Therefore, it is recommended that one uses the image of saints, gurus and avatars, or the image of yantras or simple images like the sun, moon and stars. Each person has a specific symbol to concentrate on along with the mantra.

The mantra becomes the mind and the mind is represented as a bird flying over the ocean. The ocean becomes the consciousness, and in the vast expanse of the ocean or consciousness a point of support is needed, a basis which is away from sensorial interactions. The yantra becomes like a piece of wood floating on the ocean. When the mind becomes tired of going off in unknon direction, it can alight on the piece of floating wood, rest there for a while, then fly off again. This is the concept of mantra and yantra.

Just mental repetition or even verbal repetition of mantra is not enough. The mantra should be given a task, a purpose. The power of the mantra has to be channelled towards a goal, not straight in to the environment because it will dissipate. When light is focused, it transforms itself in to a laser beam. It is the same with mantra. There has to be one aim when practising mantra sadhana. Traditionally, different purposes have been assigned to different mantras, such as health and well-being to Mahamrityunjaya mantra, and intelligence and wisdom to Gayatri mantra.

Peace-the basis of spiritual growth

The chanting of Om is the easiest and simplest of the mantras becaus it only has one sound, Om. The purpose of pranava sadhana is to transcend body consciousness, to connect with cosmic consciousness and to realize our spiritual potential. While the chanting is going on, we should have the feeling and awareness of spiritual advancement.

In order to understand the process of spiritual advancement we start with peace, *shanti*. The state of peace is the foundation of spiritual experience. In the absence of personal peace there can be no spiritual growth or development. That is the reality. The purpose of Om is to awaken the state of inner peace. This awakening of peace has to happen at various levels of our nature, personality and mind.

It will be impossible to identify the different aspects of mind, but it becomes possible to identify symbols that represent various states of mind. These symbols are the chakras or psychic centres. Whenever we chant Om,, we need to focus our attention on the different psychic centres. When we chant Om three times at the beginning of any activity, generally the instruction is to concentrate at the eyebrow centre. However, for those aspirants who wise to go deeper in to the practice of sadhana, there are three place where one needs to concentrate with each chanting of Om. These three places are the three granthis that exist in our body.

Om sadhana

Students often ask why we chant Om three times at the beginning and end of a class and I have heard teachers give different answers. Some say for peace in the physical dimension, the mental dimenstion and the spiritual dimension. Others say something else, but the real reason is concentration on the granthis. The word *granthi* means 'knot'. The yogic system recognizes three granthis or knots in our bodies.

The first is *Brahma granthi,* the knot of Brahma, the creator, at mooladhara chakra. When you chant Om the first time, always have your awareness at mooladhara. Mooladhara is responsible for creation. Our consciousness is stuck in mooladhara, in the world of matter. The second knot is *Vishnu granthi* at manipura chakra. When you chant Om the second time, bring your attentin from mooladhara to manipura. The third is *Rudra granthi,* the knot of Rudra, the transformer, the destroyer, the re-emergence of consciousness, rising of the phoenix from the ashes to ajna chakra, rebirth. When you chant Om the third time, birng your at-

tention to ajna chakra, the eyebrow centre.

This is one addition to our practice of three Oms, and teachers should also remember it. Stop for at least five seconds at each of the three chakras and become aware of light there. In time the quality of your experience will change. It may take a week or a month, but you will notice a great difference.

When we chant Om seven times, the general instruction for novices is to focus at ajna. But for mantra sadhakas each chanting of Om can be visualized in all the seven chakras, with a five second pause in between each one. There are different ways to chant Om. Normally people just use the word a five second pause in between each one. There are different ways to chant Om. Normally people just use the word Om, the sounds 'o' and 'm'. It gives one effect. Some people practise with 'A-u-m'. In kriya yoga, there is another version of Om chanting, which is an explosive 'O' followed by a long 'm-m-m'. These little things make a big difference to our practice and the quality of our experience.

So these are the three mantras: Mahamrityunjaya for healing, Gayatri for wisdom, and Om for peace. They are important practices and very beneficial for all aspepcts of life.

विषय-सूची

नोट :- लेखक के अभिमत से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

परमहंस स्वामी अनन्त भारती जी की कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियां

ग्रन्थनाम	
१. पातञ्जल योगशास्त्र एक अध्ययन	५००-०० रुपये
२. योग दर्शन योग प्रभाकर भाष्य सहित	५५०-०० रुपये
३. राजयोग साधना और सिद्धान्त	१००-०० रुपये
४. Raja Yoga and It's Practice	१००-०० रुपये
५. Divine Path by Holy Sants	७५-०० रुपये
६. दत्तात्रेय योगशास्त्र हिन्दी/इंग्लिश व्याख्या	२५-०० रुपये
७. योगबीज हिंन्दी इंग्लिश व्याख्या	५०-०० रुपये
८. अमनस्क योग हिन्दी इंग्लिश व्याख्या	५०-०० रुपये
९. योग और स्वास्थ्य	१००-०० रुपये
१०. योग और मानसिक स्वास्थ्य	५०-०० रुपये
११. योग चूड़ामणि हिन्दी व्याख्या	४०-०० रुपये
१२. शाण्डिल्य योग हिन्दी व्याख्या	४०-०० रुपये
१३. योग कुण्डली हिन्दी व्याख्या	४०-०० रुपये
१४. योग रत्नाकर हिन्दी व्याख्या	१००-०० रुपये
१५. कुण्डलिनी साधना	४०-०० रुपये
१६. प्राणायाम साधना	४०-०० रुपये
१७. योगसूत्र वृत्ति	२५-०० रुपये
१८. भारतीय न्यायशास्त्र एक अध्ययन	२००-०० रुपये
१९. अलंकार कोष	५००-०० रुपये
२०. महिम भट्टकृत काव्यदोष विवेचन	३५०-०० रुपये
२१. वृत्तिसमुच्चय हिन्दी व्याख्या भाग १-२	१५०-०० रुपये
२२. पातञ्जलयोग पर बौद्ध प्रभाव	२०-०० रुपये
२३. दर्पदलन हिन्दी व्याख्या	५०-०० रुपये
२४. तत्त्वत्रय हिन्दी व्याख्या	३०-०० रुपये
२५. कठ उपनिषद योग प्रभाकर भाष्य	१५-०० रुपये
२६. अभिधावृत्त मातृका हिन्दी व्याख्या	३५-०० रुपये
२७. शब्द व्यापार विचार हिन्दी व्याख्या	२५-०० रुपये
२८. वृत्तिवार्त्तिक हिन्दी व्याख्या	२५-०० रुपये
२९. कोविदानन्द संस्कृत हिन्दी व्याख्या	४०-०० रुपये
३०. त्रिवेणिका हिन्दी व्याख्या	७५-०० रुपये
३१. वाक्यार्थ मातृकावृत्ति हिन्दी व्याख्या	१००-०० रुपये
३२. रसकौस्तुभ हिन्दी व्याख्या	४०-०० रुपये
३३. एकावली हिन्दी व्याख्या	३५०-०० रुपये
३४. सुबोधालंकार हिन्दी व्याख्या	५०-०० रुपये
३५. स्वभाषालंकार (सिंहलीग्रन्थ) संस्कृत हिन्दी— अनुवाद	५०-०० रुपये
३६. कंकणबन्ध रामायण मूल	१०-०० रुपये
३७. वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक चिकित्सा	३५०.०० रुपये

प्राप्ति स्थान स्वामी केशवानन्द योग संस्थान (ट्रस्ट)

बी-२/१३९-१४०, सेक्टर ६, रोहिणी, दिल्ली-८५

R.No. 42838/84

Registered No. DL
Swami Keshawanand Yoga Patrika

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली के मुख्य कार्यक्रम

स्वामी केशवानन्द योग संस्थान प्राणिमात्र के कल्याण की कामना से जाति, वर्ण लिङ्ग और धर्म आदि के भेदों को महत्त्व दिये विना मानव मात्र में योग विद्या के प्रचार और प्रसार के लिए कृत संकल्प हैं। इस संकल्प की पूर्ति के लिए संस्थान द्वारा निम्नलिखित प्रकार के कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं–

१. स्वामी केशवानन्द योग पत्रिका मासिक (हिन्दी इंग्लिश संयुक्त) का प्रकाशन। वार्षिक मूल्य एक सौ तीस रुपये केवल।
२. योग विद्या से सम्बंधित साहित्य का हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशन।
३. आसान प्राणायाम षट्कर्म (नेति धौति आदि हठयोग की क्रियाओं) धारणा एवं ध्यान के प्रशिक्षण तथा अभ्यास के लिए साधना सत्रों एवं नियमित कक्षाओं का आयोजन।
४. योग विषयक स्थानीय एवं अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन।
५. आध्यात्मिक क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त विशिष्ट संतों के प्रवचनों के आयोजन।
६. सत्संगों के आयोजन।
७. योगाभ्यास के लिए उत्सुक किन्तु अत्यन्त व्यस्त जनों के लिए उनके निवास पर योग के शिक्षकों का (अल्प शुल्क लेकर) प्रवन्ध।
८. असाध्य रोगों की योग-अभ्यास द्वारा चिकित्सा।
९. योगाभ्यास में संलग्न साधकों के लिए यथोचित्त परामर्श एवं सहयोग इत्यादि।

आपको यदि योग विद्या में रुचि है, और उपर्युक्त किसी भी एक या अधिक कार्यक्रम में सम्मिलित होना चाहते हैं, तो कृपया हमें सूचित करें, जिसमें आपकी रुचि है, और सम्मिलित होना चाहते हैं। हम आपको यथा समय उस प्रकार के कार्यक्रम के सम्वन्ध में सूचना देते रहेंगे, जिससे आप यथोचित्त लाभ उठा सकें।

प्रधान कार्यालय :
बी-२, १३६-१४०, सेक्टर-६,
रोहिणी, दिल्ली-११००८५

प्रभाकर अवस्थी
(महामंत्री)

Editor & Publisher by M.M. Dr. Brahma Mitra Awasthi, for Swami Keshawanand Yoga Institute, B-2/140, Sector 6, Rohini, Delhi-85 & Printed by him at Vimal Offset, Krishna Gali No. 14, Maujpur, Delhi-53.

Rs. 12.00